REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 7 | APRIL - 2024

"रीवा जिले के साहित्य परम्परा का ऐतिहासिक अध्ययन"

डॉ. स्वाति प्रीती
इतिहास विभाग,
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)ण

सारांश –

रीवा जिले के साहित्य परंपरा का ऐतिहासिक अध्ययन करने से हमें उसकी समृद्धि, उन्नति और गिरावट की प्रक्रिया समझने में मदद मिलती है, जिससे हम उस साहित्य के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व को समझ सकते हैं। इसके अलावा, यह हमें उस समय की समाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को भी समझने का अवसर प्रदान करता है। इस अध्ययन में, हम पूर्ववर्ती साहित्यकारों के लेखन, काव्य, नाटक, गीत, उपन्यास आदि का अध्ययन करते हुए उनके समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिदृश्य को समझने का प्रयास करते हैं। इस अध्ययन से हमें उन समयों में किस प्रकार के विचारधारा और मूल्यों का प्रचलन था समझने में मदद करता है।

मुख्य शब्द – रीवा जिला, साहित्य, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक।

प्रस्तावना –

भारत की मेखला के सदृश विन्ध्यपर्वत की उपत्यकाओं में अवस्थित विन्ध्य भूमि की भाषा एवं साहित्य की अविच्छिन्न एवं सुदीर्घ परम्परा रही है। इलाहाबाद या प्राचीन 'वत्स' देश में गगा के दक्षिण तथा नर्मदा के उत्तर में वर्तमान यह भू–भाग अनिर्वचनीय प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने में समेटे हुए है। ऋग्वेद में यहाँ रहने वाली 'चेदि' नामक जाति का तथा इसके राजा 'कंशु चौद्य' का दान स्तुति के प्रसंग में उल्लेख है।' यहाँ इनकी उदारता की प्रशंसा की गई है। बाद में इस जाति के नाम पर इस भूभाग को भी सुदीर्घ काल तक 'चेदि' नाम से जाना गया।

यह भूभाग संस्कृति एवं साहित्य के लिये प्रख्यात 'मध्यदेश' के अन्तर्गत वर्णित है। महाभाष्य एवं मनुस्मृति में आर्यावर्त की जो सीमा बताई है? उसमें भी यह सम्मिलित है। इसकी भाषा ने अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा एवं सामर्थ्य वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से ग्रहण की है।

तैत्तिरीय संहिता का रचना द्वार – पूर्वोक्त आर्यावर्त से दक्षिण भारत में जाने के लिये यह प्रवेश द्वार रहा है। सामान्यतः वेदों का प्रणयन सप्तसिन्धु एवं गंगा के तट पर हुआ। धीरे–धीरे इनका विस्तार दक्षिण भारत की ओर भी हुआ। इस विस्तार के लिये विन्ध्य भूमि प्रवेशद्वार बनी थी। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता उत्तर भारत में प्रचलित है। पर 'कृष्ण यजुर्वेद' की तैत्तिरीय संहिता दक्षिण भारत में प्रचारित एवं विकसित हुई। यह तभी सम्भव है जबकि इस प्रवेश द्वार के लोगों ने इसकी भाषा तथा इसके विधि–विधान की रचना में सहायता की हो तथा सहजता से इसे अपनाया हो। इस प्रकार विन्ध्यभूमि के विद्वानों द्वारा वैदिक संस्कृत काव्य के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। पर इस देश का सबसे पहला लौकिक संस्कृत महाकाव्य–'रामायण' के विन्ध्यभूमि में आविर्भाव के तो स्पष्ट संकेत प्राप्त हैं। महाकवि बाल्मीकि ने अपने रामायण के प्रारम्भ में ही स्पष्ट उल्लेख किया है कि वे गंगा में विलीन होने वाली 'तमसा नदी के स्वच्छ जल में स्नान के लिये जाते थे।

स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम्।

इसी तमसा को यहाँ 'टमस' या 'टोंस' नदी के नाम से जाना जाता है। गंगा नदी की अपेक्षा कम महत्वशालिनी होने के कारण इसे 'तमसा' नाम दिया गया। पर यहाँ के लोगे के लिये तो सचमुच यही जीवन दायिनी है।

बाल्मीकी मुनि की वह प्रसिद्ध घटना जिससे उन्हें रामायण की रचना की प्रेरणा मिली थी। तमसा के तट पर ही घटित हुई थी। घटना है कि एक बार उन्होंने यहाँ पर क्रौंच पक्षी के जोड़े को आनन्दपूर्वक कलरव करते हुए देखा। तभी एक शिकारी ने उनमे से एक क्रौंच को मार डाला। इससे वह दूसरा क्रौंच अतिकष्ट से विलाप करने लगा। बाल्मीकि से यह दृश्य नहीं देखा गया। उन्होंने तत्काल श्लोक में शिकारी के लिये यह कहा कि 'जिस प्रकार यह पक्षी यहाँ तड़फड़ा रहा है, उसी प्रकार तुम वर्षों तक शान्ति से नहीं बैठ सकोगे। यथा –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकम् अवधीः काममोहित्।।

इसके बाद उन्हें स्वयं आश्चर्य हुआ कि उनके मुख से यह श्लोक कैसे निकल गया। बाद में उन्हें इस कार्य में भगवान राम की कृपा का अनुभव होने से सम्पूर्ण रामायण की रचना की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस प्रकार विन्ध्य भूमि की तमसा नदी के तट रामायण के नित नवीन श्लोको के गायन के युगों–युगों तक मूक साक्षी रहे हैं।

यह भूभाग प्राचीन काल से अनेक महाकवियों का आश्रय अथवा विचरण स्थल था। महाकवि कालिदास अवश्य ही इस भूभाग से परिचित थे। क्यों कि उन्होंने आम्रकूट की उत्तुंग चोटी का साक्षादनुभूत वर्णन किया है। यथा –

रेवां द्रश्चयस्युपलविषमें विन्ध्यपादे विशीर्णा।
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।।

साथ ही उन्होंने विन्ध्य के चरणों पर फैली हुई रेवा या नर्मदा नदी का वर्णन किया है।

इस भूभाग के लोग इस रेवा से अतिघनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे हैं। वर्तमान रीवा जिला का नाम रेवा का ही परिवर्तित रूप है तथा यह अति प्राचीन काल से नर्मदा के साथ सम्बन्धों की याद दिलाता है।

विश्लेषण –

यह भूमि महाकवि बाणभट्ट की भी क्रीडास्थली रही है। उन्होंने अपनी स्थाओं के कुछ पात्रों का यही आश्रय स्थल बताया है। इनके अनुसार सोन या शोण नद का प्राचीन नाम हिरण्यवाह था। इन्होंने विन्ध्याटवी का इतना सजीव वर्णन किया है कि वह वर्षों तक निकट से सम्बद्ध रहे बिना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

यह एक सुखद तथ्य है कि संस्कृत के ह्रास के युग में भी इस विन्ध्यभूमि में विपुल मात्रा में साहित्य सृजन होता रहा। 1500 से 1900 ई० के बीच यहाँ विभिन्न विषयों पर निरन्तर मौलिक साहित्य का प्रणयन होता रहा। यह ध्यान देने योग्य है कि इस काल खण्ड में विदेशी शासन के कारण अरबी, उर्दू तथा इंग्लिश का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस समय के कवि संस्कृत को छोड़कर स्थानीय भाषा हिन्दी, अवधी, उर्दू आदि में रचनाएँ पसन्द करने लगे थे ताकि वे तत्कालीन समाज में शीघ्र प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें। पर यह बघेलखण्ड की विशेषता थी कि इन तमाम प्रभावों से असम्पृक्त रहकर उसने संस्कृत के मौलिक ग्रन्थ हमें प्रदान किये।

संस्कृत में ये ग्रन्थ दर्शनशास्त्र, कोश, काव्य, नाटक आदि अनेक विषयों में प्राप्त होते हैं। दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत बलभद्रसिंह का ब्रह्मसूत्र पर राधावल्लभीय मत प्रकाशक भाष्य तथा महाराज विश्वनाथ सिंह का 'तत्वमस्यर्थ सिद्धान्त' है। इसके साथ ही इन्हीं का 'ब्रहमसूत्र भाष्य' भी है। विद्वानों के मतानुसार 'बघेलखण्ड के सम्पूर्ण साहित्य में इसे प्रथम स्थान दिया जाना चाहिये।

कोश ग्रन्थ के अन्तर्गत भानु जी दीक्षित द्वारा अमरकोश की अतिप्रसिद्ध सुधा व्याख्या का लिया जा सकता है। यह व्याख्या कीर्तिसिंह बघेल के आदेश पर लिखी गई थी। ये भानु जी दीक्षित वस्तुतः सिद्धान्त कौमुदी के रचयिता भट्टो जी दीक्षित के पुत्र थे। यह कितना सुन्दर संयोग है कि पिता, पुत्र ने क्रमशः संस्कृत व्याकरण तथा कोशग्रन्थ को उच्चतम स्वरूप प्रदान किया तथा पुत्र के कार्यों को आगे बढ़ाने का श्रेय बघेल राजाओं ने प्राप्त किया।

टीकाग्रन्थों में 'सुमार्ग' नामक ग्रन्थ पर विश्वनाथ सिंह द्वारा 'ज्योत्सना' टीका, बाल्मीकि रामायण पर तात्पर्य तरणि टीका, अध्यात्म रामायण पर ध्वनि प्रकाशिका टीका तथ वेदस्तुति टीका इत्यादि नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रशस्तिपरक काव्यों में राजस्तुति के रूप में गोविन्द भट्ट का 'रामचन्द्रयशः प्रबन्ध' उल्लेख्य है। इसके लेखक को 'अकबरीय कालिदास' उपाधि प्राप्त थी। इससे ही स्पष्ट है कि वह अपने समय का महापण्डित था। पुस्तक के नाम के अनुसार इसमें महाराज रामचन्द्र की प्रशस्ति की गई है। मुनिप्रशस्ति के रूप में महाराज विश्वनाथ सिंह का 'रामपरत्वम्' तथ वंशप्रशस्ति के रूप में रूपणि मिश्र का बघेलवंशवर्णन का नाम उल्लेखनीय है, जिसमे अत्यधिक काव्य सौन्दर्य है।

सर्गयुक्त महाकाव्यों में कवि माधव के 'वीरभानूदयकाव्यम्' का नाम लिया जा सकता है। इसमें बाबर के समकालीन बीरिसंह के पुत्र वीरभानु का बघेलों की पुरानी राजधानी गहोरा में वर्णन किया गया है। इसका काव्य सौन्दर्यपूर्ण अलंकारों का प्रयोग देखते ही बनता है। अनेक श्लोकों में कालिदास के रघुवंश की छाया है।

खण्डकाव्यों में महाराज विश्वनाथ सिंह का संगीत रघुनन्दनम् तथा गद्य प्रबन्धों में बघेलखण्ड के राजकुमार वीरभद्रदेव का दशकुमार पूर्व कथा सार को प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटकों में महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द रघुनन्दनम् नाटक प्रसिद्ध है तथा चम्मू काव्यों में पद्मनाभ मिश्रद्वारा रचित 'वीरभद्रदेव चम्पू' को लिया जा सकता है जो कि स्पष्टतः युवराज वीरभद्रदेव पर लिखा गया है। अन्य चम्पूर्ण काव्यों में महाराज विश्वनाथ सिंह का 'रामचन्द्र चम्पू' या 'रामचन्द्राहिनकम' उल्लेखनीय है।

हिन्दी काव्यों में महाराज विश्वनाथ सिंह के आनन्द रघुनन्दन नाटक के अलावा 27 अन्य तथा महाराज घुराजसिंह के 19 गन्थ इस भूमि की शोभा बढ़ा रहे हैं। निश्चय ही इन ग्रन्थों के अध्ययन से तत्कालीन भाषा की प्रकृति तथा स्वरूप पर प्रकाश पड़ सकता है।

सेन नाई सगुण धारा की रामाश्रयी शाखा के कवि रहे है। रघुराज सिंह ने अपने भक्तमाल 'रामरसिकावली' में इनका उल्लेख किया है –

बान्धवगढ़ पूरब जो गायो।
सेन नाम नापित तहँ जाओ ।।
ताकी रही सदा यह रीती ।
करत रहै साधन सों प्रीती ।।
तहँ को राजा राम बघेला ।
बरन्यों जोहि कबीर का चेला।।

विवेच्य क्षेत्र में साहित्य सृजन का चरमोत्कर्ष उन्नीसवीं शताब्दी में दिखाई पड़ता है। बाघवेश विश्वनाथ सिंह और रघुराज सिंह इस काल खण्ड के अग्रणी सृजनधर्मी है। विश्वनाथ सिंह का हिन्दी और संस्कृत पर समान अधिकार रहा श्रेष्ठ कृति 'आनन्द रघुनन्दन' को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया गया है। किला रीवा के मंथालय में विश्वनाथ सिंह की रचनाओं का विवरण इस प्रकार है–

हिन्दी – परमतत्व, आनन्द रघुनन्दन, संगीत रघुनन्दन, गीत रघुनन्दन, व्यग प्रकाश, विश्व नाथ प्रकाश, आहिक यष्टयाम धर्म शास्त्र त्रिंशत् श्लोकी, परम धर्म निर्णय, पाखण्ड मण्डिनी कवि, शस्त्र शतक, ध्रुवाष्टक, अयोध्या महात्म्य, अवधनगर का वर्णन, फुटकर भजन।

संस्कृत–तत्वमस्पर्थ सिद्धान्त भास्य, राधावल्ली भी भास्य, रामगीता की टीका, सर्व सिद्धान्त की टीका, राम रहस्यकी टीका, राम मंत्रार्थ की टीका, सुमार्ग स्त्रोत्र, वैष्णव सिद्धान्त, धनुर्विद्या, राम सागराहिक, संगीत रघुनन्दन, मुक्ति–मुक्तिसदानन्द संबोध, राम चन्द्राहिक, दीक्षा निर्णय सुमार्ग की टीका ज्योत्सना, राम परत्व, वासुदेव सहस्त्रनाम मुक्ति प्रभा,

महाराज रघुनाथ सिंह को रचनाधर्मिता विरासत में मिली। इनकी रचनाओं का विवरण सरस्वती पुस्तकालय रीवा के अनुसार निम्नवत् है–

1- आनन्दामबुनिधि	2- रुकमिणी परिणय	3- भ्रमर गीत
4- हनुमान चरित	5- रघुपति शतक	6- परम प्रबोध
7- शम्भु शतक	8- जगन्नाथ शतक	9- रघुराज मंगल

10- व्यगार्थ चन्द्रिका	11- विनय प्रकाश	12- भक्तमाल
13- भक्ति विलास	14- विनय पत्रिका	15- गद्य शतक
16- राम स्वयंवर	17- राम रजन	18-जगदीश शतक
19- नर्मदाष्टक	20- सुधर्मा विलास	21- रामष्टायाम

रघुराज सिंह रचनाकारों के आश्रयदाता थे। भक्ति और शृंगार परक गीतों के रचयिता मधुर अली को राज्य कोष से 150–00 रुपये साहित्यिक वृत्ति मिलती थी, मधुर का पूरा नाम छोटेलाल सिंह था। इनकी रचना 'युगल विनोद' लोक मानस की धरोहर है।

दुआरी सेवा के रचनाकार पं० परशुराम पाण्डेय की अमृत रचना "वह शक्ति हमे दो दयानिधे" आज भी बालको को प्रिय प्रार्थना है। विन्ध्य की साहित्य परम्परा में कवयित्रियों की भूमिका सराहनीय रही है। महाराज रघुराज सिंह की धर्मपत्नी कीर्ति कुमारी, व्यकटरमण सिंह की पुत्री सुदर्शन कुमारी और चन्द्रमुखो ओझा सतत् साहित्य–साधिका रही है। कोर्ति कुमारी के 24 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है कीर्ति सुधा, कीर्ति लता, कीर्ति रमण, ज्ञान दीपा, ज्ञान माला, भक्त प्रभाकर, राधा कृष्ण विनोद, जगदीश कीर्तिशतक, कीर्ति शिरोमणि, कीर्ति बहार, कीर्ति निधि, कीर्ति त्रिवेणी, कीर्ति कौमुदी, कीर्ति किरण, कीर्ति भास्कर, कोर्ति प्रकाश, कीर्ति कली, कीर्ति प्रमोद, कीर्ति चिन्तामणि, कीर्ति जया, कीर्ति माधुरी, कीर्ति गोविन्द, कोर्ति गंगे, कीर्ति पुष्पाजंलि।

माधवगढ़ निवासी हर शरण शर्मा, शिवा राधिका प्रसाद, राधिकेश के पुत्र अम्बिका प्रसाद 'अम्बिकेश' अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' की साहित्य साधना साहित्य परम्परा की अक्षुण्ण धरोहर है। गोपाल शरण सिंह के आत्मज सोमेश्वर सिंह की चार कृतियाँ प्रकाशित है।

लोक कवि बैजनाथ 'बैजू' बघेली के अनन्यतम रचनाकार हैं। बैजू को सूक्तियाँ लोक कंठो में बसती हैं। सैफुद्दीन 'सैफू' रामदास पयासी और हरीदास इसी परम्परा के लोक कवि हैं। बघेलखण्ड की लोककथाएँ और लोकोत्तियों का संकलन डॉ० राम दास प्रधान ने किया। लखन प्रताप सिंह उरगेश' ने बघेली लोग गीतों का संग्रह कर बघेली लोक साहित्य की श्री वृद्धि की।

शिव मंगल सिंह 'सुमन' का जन्म झगरपुर जिला उन्नाव में भले ही हुआ हो किन्तु उनकी आरम्भिक शिक्षा रीवा में हुई, यहीं से उनके साहित्य साधना का यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

विद्रोही कवि शेषमणि 'रायपुरी' ने अपनी समर्थ काव्य चेतना से विन्ध्यांचल को गौरवान्वित किया 'बागी के डायरी' (अप्रकाशित) और 'कैकेयी' खण्ड काव्य मणि जी की श्रेष्ठ कृतियाँ है। सिद्ध विनायक द्विवेदी एक सिद्धहस्त रचनाकार थे। द्विवेदी जी के उपन्यास 'प्यासीमीन' का अनुवाद रूसी भाषा में हुआ है। समाजवादी चिन्तक जगदीश चन्द जोशी मूलतः कवि है। विन्ध्य और ऋषि अगस्त के मिथक पर आधारित उनका 'शैल रेख' काव्य हिन्दी साहित्य का गौरव है।

डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल के आचलिक उपन्यास विन्ध्य की माटी के प्रमाणिक दस्तावेज हैं। डॉ. शुक्ल का शोध ग्रंथ 'बघेली भाषा का इतिहास' बघेली लोक साहित्य को उजागर करने का प्रथम प्रयास है। आदित्य प्रताप सिंह अपने गद्य काव्य, कविताओं और कहानियों के लिए तो स्मरण ही किये जायेंगे, किन्तु उनका सर्वाधिक साहित्यक योगदान जापानी छन्द 'हाइकू' की तर्ज पर बघेली 'हाइकू' की संरचना है। भगवान दास सफड़िया, धन्य कुमार सुधेश, प्रभृति रचनाकारों ने विन्ध्य की साहित्य परम्परा को निरन्तर गतिशील रखा है। प्रो. महावीर प्रसाद अग्रवाल, राम सागर शास्त्री, कुवर सूर्यवली सिंह, अख्तर हुसेन निजामी, हरि कृष्ण देवसरे, प्रद्युम्न सिंह, राममित्र चतुर्वेदी की सृजन क्षमता और साधना–दृष्टि से विन्ध्यांचल का साहित्य–लोक आलोकित हुआ है।

अनियतकालीन पत्रिका 'प्राणालोक', जहाँ एक ओर चर्चित रही है वहीं दूसरी ओर युवा संभावनाओं की साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रिका 'शीर्षक' जनचेतना की घोषणा करती है।

काव्य पाठ और मंच के माध्यम से विन्ध्य की साहित्य परम्परा में योगदान देने वाले रचनाकार शम्भु काकू, देवेन्द्र बेधड़क, गिरिजा शंकर गिरीश, कालिका त्रिपाठी, सुदामा शरद, राजीव लोचन, नूर रीवानी, रफीक रीवानी, नदीम वानी बाबूलाल दाहिया, अरुण नामदेव, श्री निवास शुक्ल सरस, पारस नाथ मिश्र, राम चन्द्र सोनी, विरागी, प्रमोद वत्स, राधेश्याम साहू 'व्यथित' और अशोक अकेला का नाम उल्लेखनीय है धनश्याम सिंह, वी. सिकन्दरस, कृष्ण नारायण सिंह, धन्यकुमार 'सुधेश', उर्मिला प्रसाद, नीरज जैन, देवीशरण ग्रामीण, सूर्य प्रकाश

गोस्वामी, राम प्रसाद शास्त्री, डॉ. सुरेन्द्र भटनागर, प्रमोद पाण्डेय नीलकंठ, भैरवदीन मार्तण्ड, रेवा प्रसाद तिवारी की सक्रिय सृजनधर्मी ऊर्जा से विन्ध्य को साहित्य परम्परा परिपूर्ण है।

डॉ. सुधाकर तिवारी, डॉ. चन्द्रिका 'चन्द्र' डॉ. आर्या त्रिपाठी, डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी, डॉ. नागेन्द्र सिंह'कमलेश', डॉ कौशल मिश्र, डॉ अभय राज त्रिपाठी, डॉ महेश दीवाना के अनुसन्धान में अवदान विन्ध्य की साहित्य परम्परा की दिशा और दशा का मूल्यांकन है। डॉ. अब्बास अली फरहत, नर्मदा नरम, रामदर्शन 'राही' सेवा राम त्रिपाठी, डॉ. विजय अग्रवाल, डॉ. कमला प्रसाद, विन्ध्य की साहित्य परम्परा के विकास में अनवरत सक्रिय हैं।

विन्ध्य की साहित्य परम्परा शैली और प्रवृत्ति की दृष्टि हिन्दी साहित्य के साथ निरन्तर जुड़ी रही है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग की सचेष्ट सृजन प्रवृत्तियों की धड़कन विन्ध्य की साहित्य परम्परा में सुनाई पड़ती है। राजनैतिक सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक सोच–समझ तथा छायावाद, रहस्यवाद, प्रयोगवाद और प्रगतिवाद के लक्षण विन्ध्यांचल के लेखन और प्रकाश में जीवन्त हैं।

नाट्य कला –

मृदुललित पदाढ्यं, गूढशब्दार्थहीन्दं
जनपद–सुख बोदयं मुक्तिमन्नृत्य–योज्यमः
बहुकृत रसमार्गं सन्धि–संधान युक्तं
भवति जगति योग्य नाटकं प्रेक्षकाणाम्।

नाट्य विधा में एक से एक यशस्वी नाटककार हुये हैं। महाराजा विश्वनाथ सिंह की नाट्य कृति ''आनन्द रघुनन्दन'' को देश का पहला नाटक होने का गौरव प्राप्त है। इसी कड़ी में लाल प्रद्युम्न सिंह, राधेशरण अनन्त, योगेश त्रिपाठी आदि दर्जनों नाटककार अपनी कृतियों से गद्य साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

नाट्य कला में– इप्टा, प्रयास, किसलय जैसी कई संस्थाएँ सक्रिय योग दान दे रही हैं। डॉ. सफड़िया और प्रो. अनाम न कई नयी नाटिकाएँ लिखी हैं। हीरेन्द्र, हनुमंत, हरीकृष्ण खत्री, प्रो. राजीव त्रिपाठी आदि अच्छे अभिनेता ही नहीं अच्छे संचालक भी हैं। नाट्य कला में आकश वाणी रीवा के कारण नए रेडियो फीचर भी पल्लवित हो रहे हैं। कालेज और विश्वविद्यालयों के युवा अभिनेता मंच पर नयो ताजगी ला रहे हैं। किंतु मराठी और बंगाली में नयी नाट्य कला जिस ऊँचाई को छू रही है उस तक विध्य की नाट्य कला अभी पहुँचने का प्रयास कर रही है।

श्री कमल जैन कविता तो लिखते ही हैं। नाटको का मंचन भी कराते हैं। उनका पूरा परिवार इस क्षेत्र में नाट्कला को मंचित करने में लगा हुआ है। नयी जमीन तोड़ी जा रही है। अब कला के क्षेत्र में एक दो नहीं अनेक देशी विदेशी परंपराएँ, अनेक शैलियों, अनेक दृष्टयाँ अपनी अपनी सृष्टियाँ कर रही हैं। यहॉ भारोपीय ही नहीं आंग्ल हिंदी बंगला मराठी ही नहीं साथ में 'युरेशिया प्रेरणाएँ साथ–साथ क्रियाएँ प्रतिक्रियाएँ और नए नए समन्वयों को स्वायत्त कर रही हैं। यह विन्ध्य का ही नहीं पूरे भारत का कला दृश्य है। नाटक कविता में घुस पैठकर रहा है। कविता कहानी में सेंध कर रही है। संगीत चित्र के रंगों में बोल रहा है। प्रबन्ध विखर रहे हैं। नए नुक्कड़ नाटक और नए मुक्तक हथ गोलो की तरह निखर रहे हैं।

बिनीत विक्रम को हायकू हौवा लग रहा है। पुराने चूड़ीवालों को अखण्ड के ड्रैगेन–आरकेस्ट्रा का स्वर और आक्रोश डराबना लगा रहा है। बहुतों के आई कार्ड–उड़ रहे हैं। संस्थाओं के कार्ड फट रहे हैं। गर्ने कि सारे फ्रन्टियर ध्वस्त हो गए हैं। इए ताण्डव के भीतर से नया लास्य–नया सौन्दर्य झाँक रहा है। नया पुराना सब गडमड हैं। पहले जो मात्र सुविधा भोगियों को सुलभ था अब सबको सुलभ है। यह है नयी कलाओं का आलम रूप विद्रूप और नवरूप।

संगीत कला –

भारत की विभिन्न कलाओं में विशेष रूप से संगीत का भारतीय संस्कृति और समाज से अटूट संबंध रहा है। चराचर को व्यामोदित करने की शक्ति संगीत में है और प्रकृति के विभिन्न उपादानों से ही मानव को संगीत की प्रेरणा मिली। भारत में संगीत, धर्म और अध्यात्म से जुड़ा था और उसी पर उसकी नींव पड़ो। मानव सभ्यता के साथ ही मठों मंदिरों में संगीत को प्रश्रय मिला। प्रभावी गायन और अष्ठयाम की आराधना पद्धति से

संगीत का प्रचार–प्रसार हुआ। संगीत आराधना का प्रमुख बिन्दु बन गया है। मध्यकाल में संगीत का विकास राज दरबारों में अधिक हुआ। राजा महाराजाओं ने सगीत को संरक्षण दिया, कुछ राजाओं ने तो रुचि लेकर संगीत की विधिवत शिक्षा भी ली। मध्ययकालीन संगीतकारों की अपनी साधना व कला का प्रदर्शन करने का अवसर राजदरबारों में ही मिला था। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर, सम्राट अकबर, विन्ध्य क्षेत्र के संगीत प्रेमी राजा रामचन्द्र सिंह बघेल आदि अनेक राजाओं ने संगीत कला को उचित प्रोत्साहन देकर तत्कालीन कलाकारों को उचित सम्मान प्रदान किया था।

संगीत के क्षेत्र में तानसेन के नाम से भारत वर्ष ही नहीं अपितु विश्व का प्रत्येक प्राणी भली भांति परिचित है। तानसेन के जन्म, संगीत शिक्षा, संगीत के क्षेत्र के चमत्कार आदि के विषय में संगीत जगत के सभी परिचित हैं। विन्ध्य क्षेत्र की संगीत परम्परा में तानसेन का विशेष योगदान रहा है। रीवा राज्य की संगीत परम्परा और संस्कृति के साथ तानसेन का नाम सदैव से जुड़ा हुआ है। जहॉ रीवा राज्य की संगीत संस्कृति का उल्लेख आता है वहॉ तानसेन को ही याद किया जाता है। संगीत की गई विधायें हैं ताापि इनमें से शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

लोक संगीत, मनुष्य मन की अपरिभाषित गहराइयों में से छलकता जीवन रस है। इन गहराइयों में दीवारें नहीं होती। इसलिये मोटे तौर पर गा उठने के असर, सभी सांस्कृतिक उपखण्डों में लगभग एक से ही होते हैं। साधारणतः बघेलखण्ड के जीवन की चाल सपाट है, परन्तु यहॉ के लोगों की शिराओं में कडुवा मीठा जीवन रस बूंद–बूंद इकट्ठा होता जाता है और गीत बनकर ऑगन देहरी मंदिर मेढुली, खेत–खलिहान और राह–बाट में छलकता रहता है।

विन्ध्य क्षेत्र में संगीत का स्पष्ट रूप रामचंद्र के दरबारी गायक तानसेन की तान से प्रारम्भ होता है। तानसेन की शिष्या का नाम था तानी । वह संगीत विद थी। संगीत ने ही गयंद राव को 'तन्नू' बना दिया था। वीर भानूदय काव्य मे लिखा है–

गांधर्वमय देह भ्राजे, यस्ततानसेन नाम कलाविदेदात्
राग प्रतिह प्रति तानमेनतम् प्रति ध्रुपत्कोटि शशांक टंका।

तानसेन की तान धरती पर 'गंधर्वलोक के प्रकाश' को स्वरपाश में बाँध लाई। तानसेन न मोजार्ट को जानते थे न मोजार्ट तानसेन को इससे यह नहीं कहा जा सकता कि विध्य क्षेत्र में संगीत था ही नहीं। ध्रुपद राग में मल्हार (ताल) रूपताल) का एक नमूना देखिए–

प्रवल दल साजि, झुकि झुमि आयो भूमिपर
उमड़ घनघोर झर इन्द्र लायो माई
बरसत मूसल धार होत पहार छार किस्न गिरिधार गोकुला
बचायो माई
बूंद न धरनी परी सबहीं की रक्षा करी,
पसु पंछी सब ही सुख पायो माई
तानसेन के प्रभु चिरंजीव रहो राजा राम, सुरपति अधीन है
सिरहिं हवायो माई!

तानसेन की तान में सार्थक स्वरों का प्रयोग है। साहित्य संगीत का सरोकार राजा–प्रजा तक ही नहीं पसुपंछी तक भी है। कला व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठाती है। समाष्टि को जाति देश और दलगत समष्टि से दलित नहीं होने देती । उसे परम समष्टि से जोड़ देती है। यह कोई रहस्यवाद नहीं वरन् कला जन्य मनुष्य मात्र का सहमानसीकरण है। तानसेन के बाद भी यहाँ ध्रुपद परम्परा के गायक धनसूर, बुधप्रकाश, तथा धोंधी हुए। इनके बाद (अजीत सिंह के समय में) हाँसिरखाँ ध्रुपद ख्याल के साथ प्रवीण वीणावादक थे। मजहब भले आपस में बैर करना सिखाया करें पर संगीत कला में न कोई हिंदू होता न मुसलमान इनके दो लड़के सुक्खन और सक्कर खाँ (जय सिंह के समय में) संगीत की साधना किया करते थे। विश्वनाथ सिंह के प्रिय गायक मुहम्मद खाँ की जब मृत्यु हुई तब वे राजा नहीं रह गए। उनका मानव हृदय एक दोहा बन गया–

मोहम्मद उतरे पार, राग झोंकि सब भार मुँह !
रहिगे असुर गंवार, विनती की उपतीर कहँ !

विश्वनाथ सिंह खुद एक श्रेष्ठ पखावज वादक थे। संगीत शास्त्र पर उनकी पुस्तक भी पठनीय है। आज के तानाशाह संगीत विंद नहीं। हत्या और बमविद हैं। संगीत मनुष्य और मनुष्यता की पहचान है। आपने क्या किसी घड़ियाल को गाते सुना है ? रघुराज सिंह के समय में मुनव्वर खाँ एक साथ कवि और संगीतकार थे। इसी समय गोविंदगढ़ घराने से बख्तावर जी गायक तथा सीताराम गायक के साथ नृत्यकार भी थे। कलाकार मुनव्वर को राजा रघुराज की मृत्यु का इतना सदमा लगा की वे फकीर हो गए। इनके दो लड़के हुए। दिलावर खाँ ख्याल गायक थे। करम अली–वीणा साधक व्यंकट रमण सिंह के शासन काल में गोविंदगढ़ घराने के साधूबाबा ग्रुपदिए और बच्चा जी अपने फन में माहिर थे।

व्यंकट रमण फौज प्रेमी थे पर हिटलर की तरह फौजवादी नहीं थे। एक ऐतिहासिक घटना है कि वे करुण संगीत सुनने में तन्मय थे तभी समाचार मिला कि गुड़गाई बाजार रीवा के एक गरीब भुजबे की दूकान में आग लग गई है। संगीत की मूर्छना ने उनके मन को इतना बढ़ा दिया था कि वे पैदल ही दौड़ पड़े। उसकी छतपर लाघव के साथ चढ़ गए। आग बुझाने लगे। संगीत और कला के प्रभाव में राजा राजा नहीं रह जाता वह लोक मानव हो जाता है। कविता और संगीत की रूह डी. एन. ए. और आर. एन.ए. जसी होती है वह वर्णातीत होती है।

कवि श्री जगदीश चन्द्र जोशी लोहियावादी थे। श्री निवास तिवारी, शिव कुमार शर्मा भी भूले भटके कविताएँ लिखते थे। श्री राम खेलावन वर्मा भी वांधव सेवाकोश से परवरिस पाते थे। संगीतकारों को भी पुरस्कृत और प्रेरित किया जाता रहा। दिलावर खाँ के शिष्य सितारवादक नजीर और वृजेन्द्रनाथ चौबे थे। नजीर के शिष्य–गुलाम रसूल, गुलाम हुसेन, फूंदन और राधिका प्रसाद थे। ये सभी नामी गिरामी कलाकार थे। उसी घराने में चार चाँद लगाने वाले सितारिये मनमोहन लाल, हर प्रसाद और शिवप्रसाद थे। मनमोहन लाल को बनारस संगीत सभा द्वारा सितारनिधि की उपाधि से विभूषित किया गया। उनके शिष्य ध्रुपद गायक कन्हैयालाल अब स्वर्ग सिधार गये।

राजाओं के बाद पूंजी का युग आया। पूँजीपतियों को भला कला से क्या सरोकार ? महारानी प्रवीण कुमारी जो श्री अमृतलाल ढोलकिया की शिष्या थीं श्रेष्ठ वीणा वादिका एवं गायिका थीं। अब राज्याश्रय से मुक्त स्वाश्रय और लोकाश्रय में कलाकार आ गए हैं। यह और भी अच्छा है। हर्षद और नलिन दोनों ढोलकिया बंधु संगीत कला में माहिर है। मैहर कभी रीवा का ही अंग था। वहाँ भी संगीत का केन्द्र था है। सरोद वादक बाबा अलाउद्दीन कलकत्ता से मैहर आए थे। सरोद के अलावा सुरबहार, बेला, पखावज, कारनेट बजाने में निष्णात थे। तानसेन की परंपरा में वे नयी कड़ियाँ जोड़ने वाले थे। सरोद बजाकर वे स्वर दृश्य उपस्थित कर देते।

शासकीय कन्या महाविद्यालय रीवा की आचार्य डॉ. सुहासिनी खले तंतु वादिका है। जब वे वाद्य बजाती है तब वे स्वतः बाद्य बन जाती है। असाध्य वीणा भी साध्य हो उठती है। हीरालाल शर्मा धूपद को जगाए हुए हैं। श्री पी. एल. गोहतकर ख्याल गायकों में माहिर हैं। बनर्जी की साधना अभी भी रुकी नहीं है। मदन गोपाल तिवारी विध्यसंगीत समाज चला रहे थे। आर. जे. पसाना संगीत कार तो हैं ही वे संगीत विद्यालय भी चलाते हैं। रागिनी त्रिवेदी सिद्धहस्त सितार वादिका है।

स्व. राजीव लोचन अग्निहोत्री ने उभयचंद्र कवि के उद्धरण को राजा राम चंद्र के विषय में उद्धृत किया है वह यहाँ के वाद्य वादकों पर भी घटित होता है। 'नख घात कलस्वनांकगा, परिरम्यक भुजेन बल्लकी हृदिरागवती निवेशिता रमणी राममरीर मद् गुणैः। ऐसे वादक वाद्य और श्रोता का मानसी अद्वैत सकार करते हैं। यही कुछ है कला का मर्म और धर्म।

बघेली लोक संगीत की सही व्याख्या करने वाले नलिन ढोलकिया शायद कछ आक्रोश में लिख गए हैं– "बघेली भूमि की तासीर ऐसी है कि यहाँ रस के फौवारे नहीं फूट सकते। प्रकृति यहाँ उदार नहीं। न यहाँ इतिहास की चुनौतियाँ ही रही जो लोक स्मृति को शौर्य से भर दे। कुछ मिलाकर यहाँ जीवन समगति से चलता है। यही समगति यहाँ के लोक गीता में भी है। फागुन के गीतों के अतिरिक्त यहाँ तेज लय शायद ही हो।"

यह भूमि पठारी है अनुदार प्रकृति स्वतः एक चुनौती है। चट्टानी जीवन को नमने के लिए है यहाँ के लोकगीत निर्गत हुए हैं। यहाँ का सोननद पथ में आए पहाड़ को मंजित करता हुआ बढ़ता है और राष्ट्र गंगा से जा मिलता है। यहाँ की रेबा नदी शिलाशायी है। यह किसी से न मिलकर खभात तक यात्रा करती हुई समुद्र मय हो उठती है। यहीं यहाँ के कला और साहित्य का भी यथार्थ है। जिसे नलिन ने अनदेखा कर दिया है।

यहाँ का नैकहाई युद्ध गुरिल्ला युद्ध का नमूना है। कुंदन कुमार को शौर्य गाथा जन गाथा बनी है। लोक गीतों में वह आज भी सजीव है। रणमतसिंह 1857 के हीरो थे–बघेली बोली में उनकी शौर्य गाथा–गोमती विकल ने लिखी है। 42 के शहीद पद्मधर सिंह को भी जनमानस ने भुलाया नहीं है। यहाँ की लोक कविता में दुनिया के प्राचीनतम मुक्त छंदों के नमूने हैं। यहाँ की लोक कविता में सभी रसों की अभिव्यक्ति है।

निराला की तोड़ती पत्थर के पूर्व ही यहाँ गिट्टी तोड़ने वालों पर कविता लिखी गई। नाजीवाद का विरोध मुखर हुआ जिसे अनसुना और अनदेखा नहीं किया जा सकता ऊपर चलै हवाई, नीचे चलै रलवाई, जरमन तोर लड़ाई नोन होइगा–सोन जिया न बाचे रे। महगी की मार को मुखर करने वाला ऐसा जनशील स्वर अन्यत्र दुर्लभ है। बड़े बड़े नेता वाहनों पर आ रहे हैं पर गांधी बाबा पैदल आ रहे यह संकेत कितना अर्थवान है–उसे अन्य अंचलों में नहीं छुआ गया है। खैर। फिर भी नलिन ने एक सोहर की अच्छी व्याख्या की है–

सोबत रहेन गजोबरि सपन एक दिखेन
एक फूल फूला है कासी त दूसरे मथुरा
तीसर फूल फूला अयोध्या
चाउच मोर ऊँचरा.....

लोक संगीत न तो शास्त्रीयता की गुलामी करता न लोक छंद ही पिंगलका चाकर है। वह शाही वादों का गुमास्ता नहीं। झण्डों का पण्डा नहीं। लोकनृत्य से 'अमुआने' की क्रिया से ही 'डिस्को' धुनें और डिस्को नृत्य निर्गत हुआ है। इस तरह इस अचल की कलाएँ शरीर, मानसी, सर्वप्रणायामी, सर्वात्म स्पर्शी और बहु आयामी होती रही है। 'नलिन' जी वास्तविकता यह है कि जहाँ पहाड़ी हाती है वहीं निदयाँ भी होती हैं। जहाँ पत्थर होते हैं–वहीं निर्झर के स्वर भी झंकृत होते हैं। यहाँ कुछ राजाश्रय के बाद यहाँ कला अब लोकाश्रय और स्वाश्रय पर चल रही है। दूर दर्शन तो दूर है पर इस क्षेत्र में आकाश वाणी रीवा से नए और युवा कलाकारों को विशेष प्रेरणा मिल रही है। बघेली गद्य का तो 'रेनासा' आ गया है। रीवा का संगीत जो उपेक्षित सा था अब श्री 'मनोरंजन बंदोपाध्याय के यहाँ आ जाने से पुनः बल और संबल सम्पन्न हो गया है। वे स्वतः एक सधे हुए काल्सिकल स्वरकार हैं। वे कलकत्ता और रीवा के बीच एक स्वर सेतु जोड़ रह होंगे। काश विंध्यवासी उन्हें और वे विध्य वासियों को समझें। इसी संदर्भ में मदन, शशिभट्ट, कृष्ण कुमार आदि भुलाए नहीं जा सकते। कोकिल और बुलबुल ही नहीं युवा श्यामा, तीतर झींगुर कंठों का भी प्रकृति में स्थान हैं।

निष्कर्षतः

कहा जा सकता है कि रीवा जिले का क्षेत्र विन्ध्य की वादियों में फैला है। ये वादियाँ आदिम सभ्यता के स्रोत संजोये हैं। इनमें आदमी की उस समय की महक है, जब उसके लिये यह क्षेत्र लोक का अंश था। इसे न अपनी प्रभुता का दर्प था न अपनी असीमता में संकोच। यहाँ के रहवासी धरती के पुत्र थे। इस क्षेत्र का इतिहास केवल शासक और शासित का नहीं, मनुष्य की विपुल रचनात्मक गतिविधियों से आप्लावित रहा है। इस इतिहास में लोक का व्यापक रूप दिखाई पड़ता है। दुर्भाग्य है कि आज लोक की अवधारणा टुकड़े–टुकड़े में बिखरी है। एक ओर हम दुनिया के करीब है और दूसरी ओर निगाहें छोटी। यह कैसी विडम्बना है। बेहतर होगा कि हम लोक के इतिहास की खोज अपनी परम्परा में करें और वर्तमान को उससे माँजें। वर्तमान में जो पौरुष है, उसे सार्थक बनाने के लिए उसकी जरूरत है। देखें कि लोक की हमारी अवधारणा क्या है, लोक में हमारी ऑख आर कान का क्या प्रयोग है? इन सारे यक्ष प्रश्नों का समाधान यदि कहीं है तो वह कला और साहित्य में ही है। यह क्षेत्र विविध ललित कलाओं, संस्कृतिक गतिविधियों, शैक्षणिक गतिविधियों एवं साहित्यिक रचनाकारों की क्रीड़ास्थली के रूप में जाना जाता रहा है। यह भूभाग पाकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण हैं। फलतः यहाँ के जनमानस में उदारता के भाव परिलक्षित होते हैं। यहाँ की प्रतिभायें देश ही नहीं सात समन्दर पार अपनी छटा बिखेरने में समर्थ हैं, फलतः इस धरती की उत्स का प्रभाव है।

संदर्भ –

1. ऋग्वेद 8.5.37–39
2. बाल्मीकि – रामायण, बालकाण्ड 1.2.4
3. आचार्य, सुद्युम्न – विन्ध्य भूमि की भाषा एवं साहित्य की परम्परा, पृष्ठ 85
4. रामायण, 1.2.15
5. कालिदास – मेघदूत पूर्वमेघ श्लोक 19
6. राही, रामदर्शन मिश्र – प्राणालोक,
7. आचार्य – सुद्युम्न – विन्ध्य भूमि की भाषा एवं साहित्य की परम्परा, पृष्ठ 88
8. सिंह, रघुराज – भक्तमाल, रसिकावली,
9. विकल, गोमती प्रसाद – विन्ध्य की साहित्य परम्परा, विन्ध्यभारती, पृष्ठ 89
10. विकल, गोमती प्रसाद – विन्ध्य की साहित्य परम्परा, विन्ध्यभारती, पृष्ठ 90
11. विकल, गोमती प्रसाद – विन्ध्य की साहित्य परम्परा, विन्ध्यभारती, पृष्ठ 91
12. मुनि, भरत – भरत नाट्यम् से
13. डॉ. पी.एल. गोहदकर – संगीत परम्परा में तानसेन, वि.भा. पृष्ठ 118
14. धोलकिया, नलिन – लोकगीतों में संगीत तत्व, आलेख उद्धुत विन्ध्यभारती पृष्ठ 159
15. कवि, माधव – अनूदित वीरभानूदय काव्य
16. अग्निहोत्री, राजीव लोचन – बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य
17. चतुर्वेदी, राम मित्र – शहडोल अंचल के लोकगीत